Bodhi-Path Year 2022 July Issue Volume 23 Page No 3-11

बुद्धकालीन एवं प्राचीन भारतीय शिक्षा : एक परिचय

रोमिका राज
शोध–छात्रा,
पालि विभाग,

नव नालन्दा महाविहार नालन्दा।

बुद्ध की शिक्षा धर्म,दर्शन और इतिहास की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। भारतीय शिक्षा का इतिहास भारतीय सभ्यता का भी इतिहास है।[1]

प्राचीन भारतीय शिक्षा सामाजिक विकास का वह मापदण्ड है जो किसी समाज के विकास को आन्गिक स्तर तक स्पष्ट करता है। मानव समूह के भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास का मूलाधार शिक्षा ही है। मानव समूह के भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास का मूलाधार शिक्षा ही है। यही कारण है कि समय समय पर शिक्षा व्यवस्था के मुल्यांककन की परंपरम बड़ी प्राचीन रही है। भारत जैसे राष्ट्र में जिसकी सभ्यता की गणना विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं के साथ होती है और जिसकी धरोहर में विश्व के प्राचीनतम ग्रंथ वेद है, निश्चय ही शिक्षा व्यवस्था प्रारंभ से सुदृढ़ रही होगी, जिसने अनन्तः दर्शन, आयुर्वेद, ज्योतिष, साहित्य, धर्म और ललित कलाओं के ज्ञान के क्षे़त्र में विश्व को विपुल सम्प्रदा प्रदान की। [2]

शिक्षा के व्युत्पत्ति मूलक अर्थ पर विचार करने से ज्ञात होता है कि शिक्षा शब्द 'शि' धातु से बना है, जिसका अर्थ है – सीखना, सीखाना। इसके अनुरूप शब्द विधा है जो संस्कृत के विद् धातु से बना है, जिसका अर्थ है, जानना या ज्ञान प्राप्त करना। इसका प्रकार शिक्षा सीखने–सीखाने की जानने अथवा ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया है। [3]

शिक्षा के द्धारा ही हमारे राष्टीय जीवन मे युग युगो तक दिब्य मानवीय आदथो की रक्षा होती गयी और जिसके आधार पर राष्ट्र ने अपना अधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक रूप में सर्वांगीण विकास किया। किसी भी समाज एवं व्यक्ति के उन्नयन के लिए शिक्षा एक आवश्यक पहलू है, इससे प्रभावित मनुष्य के जीवन संबंद्यी धटनाओ का सुनियोजित लेखा–जोखा ही इतिहास है। इस प्रकार शिक्षा एवं इतिहास का केन्द्र बिन्दु मनुष्य ही है, अन्तर मात्र इतना है कि शिक्षा मनुष्य को बनाती है और मनुष्य इतिहास निर्मित करता है। शिक्षा व्यक्ति को प्रकाश,परिज्ञान तथा नेतृत्वसे सम्बद्ध करती है, शिक्षा के ही माध्यम से मानव का सम्पूर्ण रूपान्तरण संभव होता है। महाभारत में विधा को सर्वश्राष्ट नेत्र के रूप में स्वीकार किया गया है। शिक्षा माता की भांति संतान की रक्षा करती है, पिता की भांति कल्याण साधन में लगाती है एवं पत्नी की भांति आनन्द तथा सुविधा प्रदान करती है।

इससे ऐश्वर्य, वास्तविक प्रकाश, तथा कीर्ति की उपलब्धि होती है। अर्थात विधा कल्पलता की भांति सबकुछ प्रदान करती है। [4]

बौद्ध शिक्षा पद्धति के अतर्गत दीक्षा संस्कार का उल्लेख मिलता है। बुद्ध का स्पष्ट आदेश या कि प्रत्येक उपासक को धर्म एवं विनय की सम्यक शिक्षा प्रदत्व की जानी चाहिए। इस कार्य में बौद्ध आचार्य पर्यात्त सफल रहे। बौद्ध संध में सम्मिलित होने हेतु दो प्रकार के संस्कारों का उल्लेख मिलता है, प्रवज्या एवं उपसम्पदा प्रवज्या की शिक्षा से बौद्ध शिक्षाथियों को उपासकत्व प्रारंभ होता था। 3वर्ष से आधिक उम्र के किसी भी व्यक्ति को प्रव्रज्या दीक्षा दी जा सकती है। इसके लिए उसके संरक्षक की अनुमति आवश्यक थी। उपसम्पदा की दीक्षा बौद्ध शिक्षा का सम्पादन पाना जाता था। यह साधारणतया 30वर्ष की अवस्था में सम्पन्न किया जाता था। प्रारंभ में बुद्ध स्वयं अपने भिक्षओं को प्रव्रज्या की दिक्षा देते थे। महावग्ग साहित्य से ज्ञात होता है कि सारनाथ में तथागत पंचवग्गिय भिक्षओ को अपने धम्म से अवगित कराते है। [5]

प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति आदर्श वाद पर आधरित थी। जो किसी सिद्धांत विशेष के अनुसार ही शिक्षा देना पर्याप्त नहीं सभझति थी। अपितु विभिन्न संस्कारों के माध्यम से आदर्श जीवन गठन की व्यवस्था करती थी। इस प्रकार संस्कार शिक्षा का मूलाधार था, जिसके द्वारा शिक्षार्थी का शारीरिक , मानसिक , बौद्धिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास होता था। [6]

संस्कार का सामान्य अर्थ है कि किसी वस्तु को ऐसा रू देना जिसके द्वारा वह अधिक उपयोगी बन जाए। प्राचीन भारतीय शैक्षाणिक पद्धति का मूल उद्धेश्य व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना था। अत : तत्कालीन शिक्षाविदों ने ऐसी व्यवस्था स्थापित कर रखी थी, जिससे शिक्षार्थियों का न केवल सर्वांगीण विकास हो, बल्कि वह आत्यसात् ज्ञान को जीवनोपयोगी एवं समाजोपयोगी बना सके। शिक्षा के सैद्धांतिक एवं व्यवहरिक दोनो पक्ष में बेहतर समन्वय का प्रमाण मिलता है। सैद्धान्तिक ज्ञान उसके ध्यवहार में सदैव परिलक्षित होता रहता था, जिसका अभाव वर्न्तमान भिक्षथियों में दिखलायी पड़ता है। [7]

प्राचीन भारतीय भैक्षणिक –पद्धति के अंतर्गत शिक्षण सत्र प्रवेश, शिक्षण–विधियॉ , गुरूशिष्य संबंघ, अनुशासन परीक्षा उपाधि आदि उल्लेखनीय है। [8]

बुद्ध की दृष्टि में शिक्षा अभृतत्व प्राप्ति का साधन है। शिक्षा प्रीति का आनन्द लोकोन्तर होता है। शिक्षादान सर्वोतम दान है। जिसका अभिप्राय मनुष्य के अंतस में सर्वातय गुणों के विकास से है। जो शील समाधि और प्रज्ञा की सिद्धि से ही संभव है। कला और संस्कृति का समावेश शिक्षा की इसी व्यापक परिधि में होती है। कल्याण मित्रता,

कल्याण सहायता, और कल्याण सम्पर्कता में ही सम्पूर्ण ब्रहमचर्य से, समाधि का ध्यान एवं मन की एकाग्रता से तथा प्रज्ञा तथा प्रज्ञा का संबोधि से हो जिस प्रकार सपाधि द्वारा साधक का अंत : दीप अर्थात् प्रज्ञा का उदय होता है, उसी प्रकार कला और विज्ञान के क्षेत्र में समाधि के द्वारा एक परिष्कृत सौन्दर्य बोधी कला जन्म लेती है। एक साधक बुद्ध की पधसनस्थ मुर्ति का ध्यान कर समाधि और प्रज्ञा की ओर उन्मुख होता है। वस्तुत : बौद्ध घर्म ने समाधि के माध्यमा से स्थपत्य, मूर्ति, चित्र, काव्य, आदि कलाओं का उपयोग जितनी प्रभावशीलता से किया है, मानव सभ्यता के इतिहास में वह बेमिसाल है। [9]

बुद्ध ने अपनी शिक्षा में भाव और अभाव दोनों का निषेध करके परिवर्न्तन का सिद्धांत माना है। बुद्ध की शिक्षा में भाव और अभाव दोनों का निषेध करके परिवर्न्तन का सिद्धांत माना है। बुद्ध की शिक्षा मध्यम मार्ग की शिक्षा है। [10]

इस मध्यमा मार्ग की शिक्षा को आठ अंगो अर्थात् अर्य अष्यगिक मार्ग के रूप में जाना जाता है। ये अष्टांगिक मार्ग मे ंआठ कड़ियों हैं, जो इस प्रकार हैं – ;पद्ध सम्मादिट्ठि ;पपद्ध सम्मासंकप्पो प्रज्ञा ;पपपद्ध सम्मावाचा ;पअद्ध सम्माकम्मन्तो ;अद्ध सम्माआजीवो शील ;अपद्ध सम्मात्यायो ;अपपद्ध सम्मासति समाधि ;अपपपद्ध सम्मासमाधि।

अष्टांगिक माग र्को तीन भागो ंमें भी बाँटा गया है। ये हैं – शील, समाधि तथा प्रज्ञा। शील के अंतर्गत सम्यक वचन, सम्यक कर्म तथा सम्यक आजीविका आते हैं।

समाधि क`अंतर्गत सम्यक व्यायाम, स्म्यक स्मृति तथा सम्यक समाधि जाते हैं। प्रज्ञा के अंतर्गत सम्यक दृष्टि तथा सम्यक सम्यक सकंल्प आते हैं। अष्टांगिक मार्ग का सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है – ;पद्ध – यहाँ दृष्टि का अर्थ ज्ञान है। मनुष्य को सही और गलत की रख ज्ञान से ही होती है। जो व्यक्ति कुशल तथा अकुशल को जानता हो, वहीं सम्यक दृष्टि है। कुशल अर्थात कुशलमूल को जानना है इसके अंतर्गत अलोम, अदीष अर्था कुशलमूल को जानना है इसके अंतर्गत अलोम, अदीष तथ अमीह आते है। अकशुल अर्थात अकशुल मूल को जानना इसके अंतर्गत लोभ, दाष तथा मोह आत`है। मनुष्य जब इन तीनो ंअकुशल मूलो ंका परित्याग कर दे, ता`वह सम्यक दृष्टि अर्थात सम्यक ज्ञान के रूप में जाना जाता है। ;पपद्ध – यहाँ सम्यक संकल्प से तात्पर्य है, सम्यक निश्चय। सम्यक ज्ञान हाने पर ही यह सभंव है। मनुष्य जब किसी कार्य को करने क`लिए लोभ, दोष तथा मोह का परित्याग कर वह कार्य सपांदित करता है ता`वह कार्य निश्चय है। अर्थात जब मनुष्य दूसरे मनुष्य के अहित का परित्याग कर वह कार्य करता है इस तरह के कार्य करने का संकल्प ही सम्यक सकंल्प है। [11]

पपद्ध – अर्थात ठीक भाषण। असत्य, कटु वचन को छोडक़र बोला गया हर वचन सम्यक वचन है। सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं है। इस बात को धम्मपद के यमकवग्ग के इस

गाथा से पुष्टि होती है।   न हि वेरने वेरानि सम्मन्तीद्य कुदाचनं।   अवेरने च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो।[12]

अर्थात जिन वचनो ंसे दूसरे के हृदय को चोट पहुँचे, जो वचन कटु हो, दूसरों की निन्दा हो, व्यर्थ का बकवास हो, उन्हें कभी नहीं कहना चाहिए। वरै की शांति कटु वचन से नही ंहोती अवरै स`ही संभव है।

;पपपद्ध – हिन्दु धर्म के समान बौद्ध धर्म में भी कर्म–सिद्धातं सबसे अधिक बल दिया गया है। मनुष्य की सदगति या दुर्गति का कारण उसका कर्म ही होता है। कर्म के ही कारण मनुष्य इस लोक में सुख या दुःख को भोगता है तथा परलोक में भी स्वर्ग या नरक का खुद ही उत्तरदायी होता है। मनुष्य को अच्छ`कर्म करने हेतु हिंसा, चारेी, झूठ, सुरापान इन सबो ंका त्याग करना चाहिए।[13] ;

अद्ध – सम्यक आजीव अर्थात ठीक जीविका। झूठी जीविका को छोडक़र सच्ची जीविका के द्वारा शरीर का पोषण करना। बिना जीविका के जीवन धारण करना असभंव है। मानवमात्र को शरीर रक्षण के लिए कोई न कोई जीविका गह्रण करनी ही पड़ती है, परंतु यह जीविका सच्ची हानेी चाहिए जिससे दूसरे प्राणियो ंको न ता`किसी प्रकार का क्लेम पहूँचे और न ही उसकी हिंसा के अवसर आये। समाज व्यक्तियो ंके समुदाय से बनता है। यदि व्यक्ति पारस्परिक क्ल्याण की भावना से प्रेरित हाकेर अपनी जीविका अर्जन करने में लग`तो समाज का वास्तविक मंगल होता है।[14]

सम्यक आजीविका के अंतर्गत भगवान बुद्ध ने पंचशील पर जोर दिया है य`हैं – ;पद्ध सत्य वणिज्जा अर्थात शस्त्र (हथियार) का व्यापार न करना। ;पपद्ध सत्तवणिज्जा अर्थात प्राणि का व्यापार न करना। ;पपपद्ध मंसवणिज्जा अर्थात मांस का व्यापार न करना। ;पअद्ध मज्जवणिज्जा अर्थात शराब का व्यापार न करना। ;अद्ध विसवणिज्जा अर्थात विष का व्यापार न करना।[15]

;अपद्ध – सम्यक व्यायाम अर्थात ठीक पय्रत्न। सत्कर्मी को करने के लिए मनुष्य का पय्रत्न भी सही दिशा में होना चाहिए। अविद्या को नष्ट करने के प्रयास की प्रथम पीढ़ी सम्यक व्यायाम है।[16]

इन्द्रियो ंपर संयम, बरुी भावनाओं को राकेने और अच्छी भावनाओ ंके उत्पादन का प्रयत्न अच्दी भावनाओ ंक`कायम रखने का प्रयत्न ये सम्यक व्यायाम हैं। ;अपपद्ध – इसका विस्तृत वर्णन दीघनिकाय के महासतिपट्ठान सुत्त में किया गया है। जिसमे चार स्मृतिप्रस्थान हैं, जो इस प्रकार हैं – कायानुपश्यान अर्थात काय के वास्तविक स्वरूप को जानना और उसकी स्मृति सदा बनाये रखना। इण वदेनानुपश्यना अर्थात वेदना के वास्तविक स्वरूप को जानना और उसकी स्मृति सदा बनाये रखना। बण चित्रानुपश्यना अर्थात चित्त के वास्तविक

स्वरूप को जानना और उसकी स्मृति सदा बनाये रखना। कण धर्मानुपश्यना अर्थात धर्म के वास्तविक स्वरूप को मानना और उसकी स्मृति सदा बनाय`रखना।[17]

;अपपपद्ध – सम्यक समाधि का तात्पर्य है कुशल मन। सम्यक समाधि मन को कुशल और हमेशा दूसरे मनुष्य की भलाई करने की ओर प्रेरित करता है। सम्यक समाधि मन को वह अपेंक्षित भक्ति देती है, जिससे कल्याणरत रह सके।[18]

इस प्रकार कुशल चित्त की एकागव्रा ही सम्यक समाधि है। इस प्रकार भगवान बद्धु आर्य अष्टांगिक मार्ग को समझाते हुए मध्यम माग ́को स्थापित करते हैं। बुद्ध के उपदेशो ंमें मध्यम मार्ग का उपदेश सबसे महत्वपूण्र ही नहीं बल्कि बुद्ध के उपदेशो ंका सार है। कोई भी मनुष्य मध्यम मार्ग को अपनाकर अपने जीवन को सफल बना सकता है तथा दुःखों से मुक्ति पा सकता है। इसे हम यह भी कह सकते हैं कि मनुष्य को दुःखों से छुटकारा पाने का माग ́मध्यम मार्ग है। इस मार्गकी अपनाकर हर मनुष्य अपना सर्वागीण विकास का साथ–साथ मोक्ष भी प्राप्त कर सकता है। बौद्ध धर्म में इसे निर्वाण के रूप में जाना जाता है।

भारतीय शिक्षा का इतिहास भारतीय सभ्यता का भी इतिहास है। भारतीय समाज के विकास और उसमें होने वाले परिवर्त्तनों की रूपरेखा में शिक्षा की जगह और उसकी भुमिका को भी निरंतर विकासशील पाते हैं । प्राचीन काल एवं ला` कायत के बीच शिक्षा की सार्वजनिक प्रणाली के पश्चात हम बौद्धकालीन शिक्षा को निरंतर भौतिक सामाजिक प्रतिबद्धता से परिप सम्पूर्ण हो तो देखते है। बौद्धकाल में स्त्रियों और शूद्रों को भी शिक्षा की मुख्य धारा में सम्मिलित किया गया। प्रचीन भारत में जिस शिक्षा व्यवस्था का निर्माण किया गया था वह समकालीन विश्व की शिक्षा व्यवस्था से समुन्नत व उत्कृष्ट थी लेकिन कालान्तर मे भारतीय शिक्षा की व्यवस्था का ह्रास हुआ। विदेशियो ने यहॉ की शिक्षा व्यवस्था को उस अनुपात मे विकासित नहीं किया, जिस अनुपात में होना चहिये था। अपने संक्रमण काल में भारतीय शिक्षा को कई चूनौतियों व सम्स्याओं का समना करना पड़ा। आज भी ये चुनौतियॉ व समस्याएँ स्पष्ट झलकती हैं। 1850 तक भरत में गुरूकुल की प्रथा चलती आ रही थी परन्तु मका` ले द्धारा अंग्रेजी शिक्षा के संक्रमण के कारण भारत की प्राचीन शिक्षा व्यवस्था का अन्त हुआ और भारत में कई गुरूकुल तोडें गए और उनके स्थान पर कान्वेंट और पब्लिक स्कूल खोले गए।

प्रचीन भारतीय शिक्षा ने मनुष्य के समाज को चार वर्णों, सैकडो जातियों में विभाजित एवं वर्णाश्रम धर्म का प्रतिपादन करके झडे. के कूड़ें की भांतिं अर्थ का अनर्थ कर दिया थ़ा, जिसे नैतिक मानवीय और किसी भी दृष्टि से औचित्यपूर्ण नहीं ठहराया जा सकता। जबकि बुद्ध ने वर्ण व्यवस्था और जाति भेद को अप्राकृतिक और अमानवीय बताते हुए कटु आलोचना की। इतना ही नहीं वरन उन्होने शूद्रों और चाण्डालों जैसे अस्पृश्यो को संघ में प्रवज्या देकर इतिहास की धारा को नया मोंड. दिया था। यद्यपि बुद्ध की भारत को अनेक चिरस्मरणीय देन हैं लेकिन उन अनेक देनों में से जो बुद्ध और

बौद्ध धर्म ने हमारे देश के लिए दी है, एक अत्यंत महत्वपूर्ण यह है कि उनके आविर्भाव के साथ ही हमारे देश में वास्वविक रूप ऐतिहासिक युग का आरंभ होता हैं। हमारे देश का लेखबद्ध इतिहास वस्तुतः भगवान बुद्ध के उदय से ही शुरू होता है। यद्यपि भगवान बुद्ध के पूर्व भी सारे देश को एक राष्टीय एवं सांस्कृतिक इकाई बनानें के प्रयत्न हुए थे, परंतु इस दिशा में जो प्रेरणा बुद्ध के प्रभाव से मिली, उसने इसके शीध्रकार्यान्वित होने में सहायता दी। बुद्ध ने अपने धर्म अर्थात शिक्षा का आधार प्रज्ञा को बनाया। इसलिए आधुनिक युग में कहा जाता है कि बुद्ध का धर्म वैंज्ञानिक धर्म है। यह बुद्ध की बहुत बड़ी देन थी कि उन्होंने धार्मिक मान्यताओं और सिद्धांतो की व्याख्याओ का आधार विवेक और प्रज्ञा को बनाया। बुद्ध ने अनुभव किया कि सम्पूर्ण जगत दुःख की ज्वाला में जल रहा है। इसलिए उन्हें कहना पड़ा कि सबकुछ दुःख ही दुःख है। इसलिए बुद्ध ने दुःख को ही अपने धर्म

और शिक्षा को निशाना बनाया। राहुल सांकृत्यायन के शब्दों में अनित्य, दुःख एवं अनात्म इस एक सूत्र मे ं बुद्ध की सम्पूर्ण शिक्षा आ जाती है। बुद्ध की सम्पूर्ण शिक्षा का पालन करने से दुःख का अंत किया जा सकता है।

भगवान बुद्ध की शिक्षा में तृष्णा सभी इच्छाओ का मूल है। यह सभी दुःखों का मूल है। इसलिए इच्छाओं का दमन करके इसे जीतना चहिए। दृढ़ संकल्प, प्रयत्न और अनुशासन से इच्छओं को जीता जा सकता है। नैतिक जीवन चुपचाप निष्क्रिय रहने का जीवन नहीं है। प्रमाद नैतिक दोषों का मूल है। परिश्रम, लगन और अप्रमाद नैतिकता के लिए अनिवार्य हैं। काम, क्रोध, द्रोह, मान और अज्ञान पर मैत्री, परोपकार, करूणा और सौमनस्य से विजय पाई जा सकती है। आत्म – त्याग से आत्मपूर्णाता की प्राप्ति हो सकती है। [19]

बुद्ध की शिक्षा का अंतिम उद्धेश्य है – निर्वाण। 'निर्वाण' शब्द का अर्थ है–बुझना। '' जिस प्रकार हवा के झोंके से दीपक की लौ बुझ जाती है। और असकी सन्ता नहीं रहती, उसी प्रकार देह और चिन्त सक मुक्त होने पर मुनि लूप्त हो जाता है और उसकी सन्ता नहीं रहती। जिसका तिरोभाव हो चुका हो उसका कोई रूप नहीं रहता; जिसके कारण उसकी सन्ता थी उसका अस्तित्व शेष नहीं रहता।'' मनाकविकारों को 'आग' कहा गया है। मनोविकारों के शान्त होने की अवस्था आग के बुझ जाने के तुल्य है। निर्वाण वह अवस्था है। जिसमें लोभ, धृणा, क्रोध, और मोह–इन 'आगो' का तथा विषयैषणा, भव–तृष्णा या जीवन की इच्छा और अविघा–इन आसवों का उपशम हो जाता है। निर्वाण भव–निरोध (अस्तित्व के उच्छेद) की स्थिति है। पिटकों में बार–बार अग्नि के 'जलने' और 'बुझने' की बात कही गई है। मनाविकारों से युक्त पुरूष का अग्नि में जलना कहा गया है। चार मार्गा को आग बुझाने के मार्ग कहा गया है। निर्वाण को 'सितिभाव' (आग का ठण्डा होना) कहा गया है। निर्वाण में मनोविकार पूरी तरह शान्त हो जाते है। और दुःख लेशमात्रभी नहीं रहता। निर्वाण अस्तित्व का उच्छेद नहीं है। इस लीवन मे। भी निर्वाण की प्राप्ति सम्भव है।

इस जीवन में भी दुःखों का पूरी तरह निरोध किया जा सकता है। निर्वाण का अर्थ स्वर्ग नहीं है जो मृत्य के बाद ही प्राप्त हो सके। यह उसे लिसने धर्म के अनुसार शील और 'विनय' की सिद्धि कर ली है, इस जीवन में ही प्राष्य है। निर्वाण में 'अहकार',ममकार से मुक्ति मिल जाती है। बुद्ध ने अपने जीवन–काल में ही निर्वाण प्राप्त कर लिया था और

इसलिए इस बात का कोई कारण नहीं है कि दुसरे लोग इस जीवन में निर्वाण प्राप्त न कर सकें। निर्वाण निष्क्रियता नहीं है। निर्वाण होने पर सक्रिय बौद्धिक और सामकजिक जीवन बिताया जा सकता है। स्वयं बुद्ध ने निर्वाण–प्राप्ति के बाद ऐसा जीवन बिताया था। निर्वाण कर्मसंन्यास नहीं है, बल्कि रा, द्धेष और जोह से मुक्त होकर कर्म`रना है। इसमें संन्यास उन चीजों का करना होता है लो पुनर्जन्म के कारण हैं, अर्थात् इसमें तृष्णा, जीवन की इच्छ, का नाश करना होता है। निर्वाण की धारणा उपनिषदों की जीवन्मुक्ति की धारणा के तुल्य है। अन्तर केवल इतना है कि बौद्ध आत्मा को नित्य नहीं मानते। निर्वाण में कारण–क्षृंखला का सदा के लिए अन्त हो जाता है, अन्तिम विज्ञान की देहान्तर–प्राप्त नहीं होती। विज्ञान सन्तान की कविच्छिन्नता इस जीवन के बाद समाप्त हो जाती है। निर्वाण को प्रपत पुरूष के पूर्व कर्म क्षीण हो जाते हैं नये कर्मां का संचय नहीं होता; पुनर्जन्म की तृष्णा नष्ट हो जाती है।; और कोई नई तृष्णा उसके अन्दर पैदा नहीं होती तथा दीपक की तरह वह बुझ जाता है। निर्वाण प्राप्त होने पर जो जीवन च्यतीत होता है उसमें तृष्णा और आसव लेशमा़त्र भी नहीं रहता। आसव मन का मल हैं। [20]

बुद्ध समझते थे कि समस्त दुःखों का कारण अविघा, अशिक्षा और अज्ञान है। इसलिए उन्होंने प्रबुद्ध समाज के निर्माण के लिए प्रज्ञा के प्रचार और और प्रसार पर बल दिया। बुद्ध ने इसलिए कहा, ''यदि मूर्ख जीवन भर पण्डित के साथ रहे, तो भी वह धर्म को वैसे ही नहीं जान सकता, जैसे कि कजछी दाल (सूप) के रस को। समाज में लोग धन आदि की प्राप्ति की आपाधापी में लगे रहते है। इसलिए मानवीय मूल्यों की प्राप्ति में अनेक प्रकार की दिक्कतें आती हैं। इस स्थिती में बुद्ध का कथन सटीक प्रतीत होता है, ''मेरा पुत्र है, मेरा धन है, इस प्रकार मूर्ख परेशान होता है, जब मनुष्य स्वयं अपना नहीं, तो पुत्र और धन असके`हां तक होंगे?'' दुर्बुद्धि मूर्ख अपना शत्रु स्वयं होकर पाप–कर्म करते विचरण करता है, जिसका फल कडुवा होता है।'' ''मूर्ख का जितना भी

ज्ञान होता है, वह उसके अनर्थ के लिए ही होता है। वह मूर्ख की अच्छाई का नाशा करता है और उसकी प्रज्ञा (सिर) को नीचे गिरा देता है।''

इसलिए बुद्ध ने कहा, ''विचरण करते यदि अपने से श्रेष्ठ या अपने समान व्यक्ति को न पाये, तो दृढता के साथ अकेला ही विचरें। मुर्ख से मित्रता अच्छी नहीं। मूर्खता का दमन, शील और प्रज्ञा से किया जा सकता है, ''जो अपने लिए या दूसरें के लिए पुत्र,धन और राज्य नहीं चाहता और न अधर्म से अपनी उन्नति चाहता है, वही शीलवान, प्रज्ञावान और धार्मिक है। [21]

उपसंहार

शिक्षा सभ्यता का मुख्य अंग है। भारतीय समाज में प्राचीन काल से ही शिक्षा का स्वरूप अत्यंत ज्ञानपरक, सुव्यवस्थित, सुनियोजित था। जिसमें व्यक्ति के लौकिक और पनलौकिक जीवन के लिए विभिन्न प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाती थी। मनुष्य और समाज का आध्यात्मिक और बौद्धित उत्कर्ष शिक्षा के माध्यम से ही संभव है। शिक्षा का प्रमुख उद्धेश्य मानव सभ्यता का विकास करना है। जिसके अंतर्गत समाज को सुशिक्षित करना महत्वपूर्ण है। विघा जीवन का समुचित मार्गदर्शन करती है। शिक्षा का प्रमुख उद्धेश्य व्यक्ति के चरित्र का निर्माण करना है। प्राचीन भारत में मौखिक शिक्षा पद्धति का विशेष महत्व था। महाभारत के अनुसार मौखिक पाठ विधि से वेदों का अध्ययन होता था। मौखिक शिक्षा पद्धति का उल्लेख जातको मे भी मिलता है, बौद्ध शिक्षण पद्धति का आरंभ स्वयं महात्मा बुद्ध ने किया था।

बुद्धकालीन एवं भारतीय शिक्षा दोनों ही शिक्षा आरभ में मौखिक ही रही थी। शुरूआत में गुरू के मुस सक निकली हुई वाणी ही शिक्षा का आधार था। उस समय किताब, कलम अथवा किसी भी प्रकार का लिखित विवरण मौजूद नहीं था। प्राचीन काल में संगणक ,न कान्वेन्ट स्कूल की सुविधा थी, फिर भी उस समय की शिक्षा बेहतर ही थी। बुद्ध की शिक्षा का आधार स्वयं भगवान बुद्ध से निकली हुई वाणी थी। बद्ध अपने समय ही संघ में उपस्थित भिक्षुओं को स्मरण करवाते थे। उस समय स्मरण की गई बातों को लोग शिक्षा की तरह ही व्यवहत करते थे। शिक्षा से ही मनुष्य,परिवार तथा समाज,को विकसित किया जा सकता है। इसके साथ ही साथ ही साथ शिक्षा ही एक ऐसा हथियार है, जिससे समाज में फैले रूदिवादी,अंधविश्वास को दूर किया जा सकता है। इस प्रकार शिक्षा से ही मनुष्य का सर्वागीया विकास संभव है। मनुष्य के जीवन में शिक्षा है तथी वह एक बुद्धिजीवो प्राणी कहलाता है। आज मनुष्य हर क्षेत्र हो, ऐतिहासिक हो इन सबों के विकसित होने का एक ही आधार है, वह है – शिक्षा। अस प्रकार शिक्षा ही एक ऐसा आधार है, जिससे हर मनुष्य अपने आप को सर्वगुण सम्पन्न बना सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूचि

(1) बुद्ध का समाजदर्शन, पृष्ट सं० – 110,

(2) प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति, पृष्ट सं० – 98,

(3) शूद्रो का प्राचीन इतिहास, पृष्ट सं० – 97 – 99,

(4) प्राचीन भारत का सामजिक और आर्थिक इतिहास, पृष्ट सं० – 118,

(5) बुद्धि धर्म के विकास का इतिहास, पृष्ट सं० – 179,

(6) भारत में बौद्ध घर्म का इतिहास, पृष्ट सं० – 279,

(7) भारतीय शिक्षा का इतिहास , पृष्ट सं० – 177,

(8) भारतीय दर्शक , पृष्ट सं० – 55,

(9) बोध चक्र, पृष्ट सं० – 01,

(10) भारतीय दर्शन, पृष्ट सं० – 36,

(11) .विभज्यवाद, पृष्ट सं॰ – 73.

(12) .धम्मपदं, पृष्ट सं॰ –04.

(13) . आदर्श जातक कथाएँ, पृष्ट स॰ं – 470.

(14) . बौद्ध–दर्शन–मीमांसा, पृष्ट सं॰ – 57

(15) . बौद्ध धर्म के 2500 वर्ष, पृष्ट सं॰ – 218.

(16) भगवान बुद्ध और उनका धर्म,पृष्ट स०–99,

(17) बुद्ध का समाजदर्शन , पृष्ट सं० – 319,

(18) .भगवान बद्धु और उनका धर्म, पृष्ट सं॰ – 269.

(19) . भारतीय दर्शन , पृष्ट सं॰ – 39,

(20) भारतीय दर्शन , पृष्ट सं॰ – 40–41,

(21) बुद्ध का समाजदर्शन , पृष्ट सं० – 287,